**E-ISSN:** 2583-9667
**Indexed Journal**
**Peer Reviewed Journal**
https://multiresearchjournal.theviews.in

**Received: 13-11-2025**
**Accepted: 20-12-2025**
**Published: 16-01-2026**

**INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY**

**Volume 4; Issue 1; 2026; Page No. 133-141**

# मुग़लों की दक्षिण नीति-अकबर से औरंगजेब तक (1590-1707)

**[1]अमर कुमार भारती, [2]हिमांशु कुर्रे**

[1]शोधार्थी, इतिहास विभाग, गुरु घासीदास विश्विद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत
[2]एम. ए., इतिहास विभाग, गुरु घासीदास विश्विद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

**DOI:** https://doi.org/10.5281/zenodo.19046748

**Corresponding Author:** अमर कुमार भारती

**Abstract**

दक्षिण भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने की आकांक्षा भारतीय शासकों में प्राचीन काल से ही रही है, जिसका प्रारंभ मौर्य काल में चंद्रगुप्त मौर्य और सम्राट अशोक के समय से माना जाता है । गुप्त शासक समुद्रगुप्त द्वारा प्रतिपादित ग्रहण-मोक्ष-अनुग्रह की सामरिक परंपरा का मध्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी ने कुशलतापूर्वक अनुसरण किया, जिसका उद्देश्य भौगोलिक विस्तार के स्थान पर दक्षिण से वार्षिक कर और अकूत संपदा प्राप्त करना था । वहीं गियासुद्दीन तुगलक, मोहम्मद बिन तुगलक जैसे शासकों ने प्रत्यक्ष तौर पर दक्षिण में साम्राज्य विस्तार और विलय का मार्ग चुना । गियासुद्दीन और विशेषकर मुहम्मद बिन तुगलक के काल में, अप्रत्यक्ष नियंत्रण के स्थान पर प्रत्यक्ष नियंत्रण हेतु सैन्य कार्यवाही की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिसके परिणामस्वरूप 1323 ई. में वारंगल का पूर्ण प्रशासनिक एकीकरण कर दिया गया । इसी कालखंड में 1336 ई. में हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने विजयनगर साम्राज्य की नींव रखी, जिसकी राजधानी हम्पी थी । इसके कुछ समय पश्चात, 1347 ई. में अलाउद्दीन बहमन शाह के नेतृत्व में बहमनी राज्य की स्थापना हुई । इन दोनों राज्यों के बीच रायचूर दोआब को लेकर लंबे समय तक संघर्ष चला । इसी क्रम में बहमनी साम्राज्य 1518 ई. तक पाँच स्वतंत्र सल्तनतों में विभाजित होकर मुगलकालीन राजनीति के लिए सामरिक आकर्षण और निरंतर संघर्ष का केंद्र बन गई । दिल्ली सल्तनत के शासकों की राज्य विस्तार की नीति और दक्षिण भारत में इस्लामिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार ने स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे विद्रोहों को जन्म दिया ।

मुगल साम्राज्य के लिए दक्षिण भारत का अभियान राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक तरह केंद्रीय रणनीति का हिस्सा रहा । जहाँ बाबर और हुमायूँ का ध्यान मुख्य रूप से उत्तर भारत तक सीमित रहा उन्होंने दक्षिण भारत की ओर उतना ध्यान नहीं दिया । अकबर, शाहजहां एवं औरंगजेब ने दक्कन की अपार संपदा और उत्तर भारत में स्थिरता के कारण इन अभियानों को प्राथमिकता दी । इस क्रम में अकबर ने साम्राज्य विस्तार और पुर्तगालियों के प्रभाव को संतुलित करने के लिए दक्षिण की ओर कदम बढ़ाए । अकबर ने खानदेश और असीरगढ़ (1601 ई.) की विजय से दक्षिण में प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित करने की नींव रखी, जिसे जहांगीर ने कूटनीति और संधियों के जरिए आगे बढ़ाया । शाहजहाँ के शासनकाल में दक्षिण नीति पुनः आक्रामक हुई और 1632-33 ई. में अहमदनगर को पूरी तरह मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया । विशेष रूप से औरंगजेब का काल दक्कन क्षेत्र में मराठों, बीजापुर, गोलकुंडा और अन्य क्षेत्रीय सल्तनतों के साथ संघर्ष का विषय बना रहा । अंततः जिस दक्षिण नीति को साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए अपनाया गया था, वही अत्यधिक केंद्रीकरण और सैन्य क्षरण के कारण मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण सिद्ध हुई । औरंगजेब ने अपने शासनकाल का एक बड़ा हिस्सा दक्कन के युद्धों में झोंक दिया, जिसका मुख्य उद्देश्य मराठों का दमन और बीजापुर व गोलकुंडा जैसी सल्तनतों का नाश कर अपने साम्राज्य में शामिल करना था । निष्कर्षतः दक्कन का यह अंतहीन संघर्ष 'दक्कन के नासूर' के रूप में परिणत हुआ, जिसने अंततः मुगल साम्राज्य के पतन की नींव रखी ।" इस प्रकार देख सकते हैं कि अकबर एवं जहांगीर की नीति अधिक आक्रामक नहीं थी परन्तु, शाहजहां और विशेषकर औरंगजेब के काल में यह नीति पूर्ण सैन्य विलय और वर्चस्व में बदल गई।

**मुख्य शब्द:** मुग़ल साम्राज्य, दक्षिण नीति, औरंगजेब, सांस्कृतिक विस्थापन, मराठा संघर्ष, साम्राज्यवादी विस्तार, बीजापुर-गोलकुंडा विलय, दक्कन का नासूर ।

**प्रस्तावना**

दक्षिण भारत पर वर्चस्व स्थापित करने की आकांक्षा भारतीय शासकों में प्राचीन काल से ही प्रधान रही है । इस सामरिक यात्रा का प्रारंभ मौर्य काल में हुआ, जस्टिन के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य ने 6 लाख की विशाल सेना के साथ लगभग संपूर्ण भारत को विजित किया । आर.एस. शर्मा ने अपनी किताब "प्रारंभिक भारत का परिचय" में उल्लेख किया है जिसके अनुसार, तमिलनाडु और पूर्वोत्तर को छोड़कर उनका साम्राज्य सुदूर दक्कन तक विस्तृत था । चंद्रगुप्त द्वारा अंतिम समय में जैन धर्म अपनाकर मैसूर के समीप श्रवणबेलगोला जाने और उनके उत्तराधिकारी अशोक के अभिलेखों जैसे मास्की और नेत्तुर के अभिलेख, दक्षिण में मौर्यों के प्रशासनिक और सांस्कृतिक प्रभाव को प्रमाणित करती है ।

गुप्त वंश के आगमन के साथ इस नीति में ग्रहण-मोक्ष-अनुग्रह का सिद्धांत जुड़ा । समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के साक्ष्यानुसार उसने दक्षिण के बारह राज्यों, जिसमें कांची के पल्लवों को पराजित तो किया, परंतु प्रशासनिक बोझ के स्थान पर वार्षिक कर को प्राथमिकता देते हुए उन्हें स्वतंत्र रखा । इसी सफल नीति का मध्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी ने पुनरावृत्ति की, जिसने प्रथम चरण (1296 ई.-1313 ई.) में महाराष्ट्र, देवगिरी, वारंगल और मदुरै से केवल अकूत संपत्ति लूटी और प्रत्यक्ष शासन से परहेज किया । हालाँकि, अंतिम वर्षों में विद्रोहों के कारण (भिम्मला के विद्रोह) से उसने समामेलन की नीति की नींव रखी व प्रत्यक्ष तुर्की नियंत्रण स्थापित किया, अपने पिता की नीति का अनुसरण करते मुबारक शाह खिलजी ने 1318 ई. में देवगिरी को सीधे सल्तनत में मिला लिया एवं वारंगल में भी सैन्य हस्तक्षेप किये ।

दक्षिण नीति का यह विकासक्रम तुगलक काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा । गियासुद्दीन तुगलक के काल में उसके पुत्र उलूग खां (मुहम्मद बिन तुगलक) ने वारंगल को जीतकर साम्राज्य में मिलाकर उसका नाम सुल्तानपुर रखा और उसे 9 प्रशासनिक जिलों में विभाजित कर प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित किया । इतिहासकार बरनी के अनुसार –"गियासुद्दीन और मुहम्मद बिन तुगलक दोनों ही अत्यंत महत्त्वाकांक्षी थे । मुहम्मद बिन तुगलक भारत में भूमि का एक भी ऐसा कतरा छोड़ने के लिए तैयार नहीं था जो उसके नियंत्रण और आधिपत्य में न हो ।" उसने खिलजी और गुप्त शासकों की अप्रत्यक्ष नियंत्रण की नीति को पूरी तरह त्याग दिया । परिणामस्वरूप, उसके काल में माबर, मदुरै और द्वारसमुद्र जैसे सुदूर दक्षिण के क्षेत्र भी पहली बार दिल्ली के प्रत्यक्ष प्रशासनिक आधिपत्य में आए, जिससे उत्तर और दक्षिण भारत का राजनीतिक एकीकरण अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच गया ।

तुगलक वंश की केंद्रीय सत्ता के क्षय ने दक्षिण भारत में दो युगांतरकारी साम्राज्यों के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया । वर्ष 1336 ई. में संगम वंश के दो भाइयों, हरिहर और बुक्का ने तुंगभद्रा के तट पर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की इसके समांतर, 1347 ई. में अलाउद्दीन बहमन शाह के नेतृत्व में बहमनी सल्तनत का उदय हुआ, जिसने दक्षिण में एक सुदृढ़ प्रशासनिक और सैन्य ढांचे की नींव रखी । इन दोनों मध्यकालीन महाशक्तियों के मध्य स्थायी संघर्ष का मुख्य कारण रायचूर दोआब की उर्वर भूमि थी । कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के मध्य स्थित इस क्षेत्र के साथ-साथ मराठवाड़ा के कोंकण तट और कृष्णा-गोदावरी डेल्टा पर नियंत्रण स्थापित करने की रणनीतिक आकांक्षाओं ने इनके संबंधों को निरंतर तनावपूर्ण बनाए रखा । यह द्वि-ध्रुवीय संघर्ष न केवल क्षेत्रीय संप्रभुता के लिए था, बल्कि दक्षिण भारत के आर्थिक संसाधनों और समुद्री व्यापारिक मार्गों पर एकाधिकार प्राप्त करने की एक वृहद भू-सामरिक प्रतिस्पर्धा का भी परिचायक था । इन विजयनगर एवं बहमनी जैसे राज्यों का उल्लेख बाबर ने दक्षिण भारत का वर्णन करते हुए अपनी आत्मकथा तुजुक-ए-बाबरी में भी किया है ।

कुछ समय पश्चात लगभग 1518 ई. में यह बहमनी राज्य पांच राज्यों में विभाजित हो गया बहमनी साम्राज्य के पतन का सबसे निर्णायक कारण योग्य वज़ीर महमूद गवां की हत्या 1481 ई. थी, जिसने साम्राज्य की प्रशासनिक स्थिरता को नष्ट कर दिया । इसके बाद, दरबार में 'अफ़ाकी' (विदेशी मुसलमान) और 'दक्कनी' (स्थानीय मुसलमान) गुटों के बीच बढ़ते आंतरिक संघर्ष और सुल्तानों की व्यक्तिगत अकर्मण्यता ने केंद्र को बेहद कमजोर कर दिया । केंद्रीय नियंत्रण ढीला पड़ते ही महत्वाकांक्षी प्रांतीय गवर्नरों ने विद्रोह कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप विशाल बहमनी साम्राज्य पांच राज्यों में विभाजित हो गया – 1. अहमदनगर, 2. बीजापुर, 3. गोलकुंडा, 4. बीदर, एवं 5. बरार ।

मध्यकालीन दक्षिण भारत का राजनीतिक इतिहास विजयनगर साम्राज्य और बहमनी सल्तनत के मध्य निरंतर चलने वाले सत्ता-संघर्ष का इतिहास रहा है । बरार और बीदर के विलय के पश्चात दक्कन में तीन प्रमुख मुस्लिम रियासतों- अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा का विजयनगर के साथ वैचारिक एवं क्षेत्रीय प्रभुत्व को लेकर स्थायी सैन्य टकराव जारी रहा । इस संघर्ष का कारण

मुख्यतः रायचूर दोआब की उर्वर भूमि, कृष्णा-गोदावरी डेल्टा और कोंकण तट के सामरिक बंदरगाहों पर नियंत्रण स्थापित करना था । यह दीर्घकालिक भू-सामरिक प्रतिस्पर्धा 1565 ई. में 'तालिकोटा के युद्ध' के रूप में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची, जहाँ दक्कन की संयुक्त सेनाओं ने विजयनगर के सेनापति रामराय को पराजित कर हम्पी का विध्वंस कर दिया । यद्यपि इस विजय ने विजयनगर की शक्ति को समाप्त कर दिया, किंतु आंतरिक गुटबाजी, सुल्तानों की अकर्मण्यता और विलासिता ने इन राज्यों को पुनः आपसी कलह में ढकेल दिया, जिसने अंततः उत्तर भारत में सुदृढ़ हो चुके अकबर के दक्षिण अभियान के लिए मार्ग प्रशस्त किया ।

इस सैन्य शत्रुता और क्षेत्रीय वैभव पर समकालीन विदेशी यात्रियों के वृत्तांत विशेष प्रकाश डालते हैं । जहाँ अब्दुल रज्जाक और डोमिंगो पायस ने विजयनगर की सात-स्तरीय अभेद्य किलाबंदी और विशाल हस्ति-सेना को दक्षिण की अजेय सैन्य शक्ति के रूप में चित्रित किया, वहीं फर्नाओ नुनीज़ ने युद्धों के आर्थिक निहितार्थों और जनमानस पर बढ़ते करों के बोझ का विश्लेषण किया । दूसरी ओर, रूसी यात्री एथेनेशियस निकितिन ने बहमनी सैन्य तंत्र की भव्यता के साथ-साथ वहाँ व्याप्त तीव्र सामाजिक विषमता को रेखांकित किया । निष्कर्षतः, इन यात्रियों के साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि विजयनगर और बहमनी के मध्य के युद्ध केवल राजनीतिक संप्रभुता के लिए नहीं, अपितु आर्थिक संसाधनों और व्यापारिक मार्गों पर पूर्ण एकाधिकार स्थापित करने के निर्णायक भू-सामरिक प्रयास थे ।

## मुग़लों की दक्षिण नीति

भारत में मुगल सत्ता के प्रारंभिक चरण में बाबर और हुमायूं का प्रभाव मुख्य रूप से उत्तर भारत की राजनीतिक अस्थिरता और आंतरिक विद्रोहों के दमन तक सीमित रहा, जिसके कारण दक्कन उनके प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र से बाहर रहा । मुगलों के दक्षिण अभियानों का विधिवत एवं व्यवस्थित सूत्रपात अकबर के शासनकाल में हुआ, जो कालांतर में औरंगजेब के काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा । जिस समय मुगलों ने दक्षिण में प्रवेश किया, वहाँ खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बरार, बीदर और उभरती हुई मराठा शक्ति जैसी सात प्रमुख क्षेत्रीय शक्तियाँ सक्रिय थीं । इन राज्यों की उर्वर भूमि, समृद्ध व्यापारिक मार्ग और मसालों के भंडार ने मुगलों को आर्थिक रूप से आकर्षित किया, वहीं इन राज्यों की उपस्थिति एक निरंतर सामरिक चुनौती भी बनी रही ।

अकबर से लेकर औरंगजेब तक, मुगल सम्राटों ने दक्कन पर आधिपत्य स्थापित करने हेतु विविध सामरिक एवं कूटनीतिक दृष्टिकोण अपनाए । जहाँ अकबर ने सुदृढ़ कूटनीतिक संबंधों और प्रारंभिक सैन्य अभियानों के माध्यम से दक्षिण में मुगलों के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया, वहीं जहाँगीर और शाहजहाँ ने आंशिक सैन्य हस्तक्षेप एवं संधियों द्वारा इस प्रभाव को विस्तार दिया । यद्यपि इन नीतियों में धार्मिक कारकों की उपस्थिति गौण थी, किंतु औरंगजेब के शासनकाल में यह नीति पूर्णतः आक्रामक क्षेत्रीय विस्तार और रूढ़िवादी विचारधारा से प्रेरित होकर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई । इसी उग्र विस्तारवाद के परिणामस्वरूप औरंगजेब को बीजापुर, गोलकुंडा और विशेषकर मराठों के साथ दीर्घकालिक व विनाशकारी संघर्षों का सामना करना पड़ा । औरंगजेब के पश्चात, केंद्रीय सत्ता की निर्बलता और राजनीतिक शून्यता के कारण कोई भी परवर्ती शासक दक्कन पर प्रभावी नियंत्रण बनाए रखने में सफल नहीं हो सका ।

अकबर की दूरदर्शी नीतियों के अंतर्गत साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों का एकीकरण शासन की आधारभूत विशेषता बन गया, जिसने एक जटिल सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य की नींव रखी । यह काल उनके पूर्ववर्तियों की संकीर्ण प्रथाओं से एक युगांतरकारी बदलाव का प्रतीक था; अकबर ने स्थानीय हिंदू शासकों के साथ सामरिक गठबंधन को प्रोत्साहित किया और 'दीन-ए-इलाही' के माध्यम से एक समन्वित संस्कृति विकसित करने का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य विभिन्न संप्रदायों के मध्य की खाई को पाटना था । इसके विपरीत, समावेशिता की यह भावना औरंगजेब के काल में क्षीण होने लगी । रूढ़िवादी सुन्नी सिद्धांतों की पुनर्स्थापना और विभेदकारी नीतियों ने गैर-मुस्लिम प्रजा को मुख्यधारा से पृथक कर दिया, जिसने कालांतर में साम्राज्य के विखंडन के बीज बोए । इन विरोधाभासी दृष्टिकोणों ने न केवल तत्कालीन राजनीतिक गतिशीलता को प्रभावित किया, बल्कि एक ऐसी स्थायी विरासत भी छोड़ी जो दक्षिण एशिया में पहचान और शासन के समकालीन विमर्श को आज भी प्रासंगिक बनाए रखती है ।

## अकबर की दक्षिण नीति

**सर स्मिथ के अनुसार:** "अकबर और उनके इतिहासकारों ने तमिल राज्यों का कभी उल्लेख नहीं किया और जहाँ तक संभव है उन्होंने विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य के बारे में कभी भी सुना

नहीं।" किन्तु बाबरनामा का फारसी अनुवाद अकबर के काल में अब्दुल रहीम खानखाना ने 1589 ई. में किया । तथा वहीं बाबरनामा या तुजुक-ए-बाबरी में बाबर के अनुसार – "जब मैंने भारत को विजित किया तो यहाँ पांच मुसलमान और दो काफिर बादशाओं का राज्य था ।" बाबर ने जिन पांच मुस्लिम राज्यों का उल्लेख किया है वे- दिल्ली, बहमनी, गुजरात, मालवा तथा बंगाल हैं । हिन्दुओं के दो राज्यों के अंतर्गत वह विजयनगर तथा मेवाड़ के राज्यों का वर्णन करता है ।

**अबुल फजल कहते हैं कि**

"दक्षिण भारत में अच्छा शासन देना अकबर की नैतिक जिम्मेदारी थी और इसी उद्देश्य से उसने दक्कन के शासकों के पास अपने दूत भेजे थे और अपने नियंत्रण में लेने के लिए अभियान चलाया ।" किन्तु यह उसके अभियान का एकमात्र कारण नहीं हो सकता, चूँकि कोई भी शासक दक्कन अभियान का जोखिम इस कारण नहीं ले सकता था । वास्तविकता देखें तो मुगलों के दक्कन नीति के पीछे कई जटिल कारक रहे हैं ।

**अकबर की दक्षिण नीति का कारण-**

- अकबर साम्राज्यवादी था उसने उत्तरी भारत के क्षेत्र पर अधिकार करके दक्षिण में विस्तार करने की योजना बनाई ।
- गुजरात में चलाये गए विजय अभियान के बाद उनके विद्रोही शत्रु भाग कर दक्कन के राज्यों में शरण लेते थे तथा दक्कनी राज्यों के आपसी संघर्ष ने अकबर को हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित किया ।
- अकबर ने एक वृहद पैमाने पर सैन्य शक्ति स्थापित की थी इस सेना को सक्रिय रखने के लिए निरंतर अभियानों की आवश्यकता थी ।
- अहमदनगर व दक्षिण के अन्य शिया राज्य कमजोर थे ।
- अकबर दक्कन के क्षेत्र में प्रत्यक्ष प्रभाव रखना चाहता था ।

**अकबर की गतिविधि**

मुगल सम्राट अकबर के लिए खानदेश का भू-सामरिक महत्व अत्यधिक था, क्योंकि इसे 'दक्कन का प्रवेश द्वार' माना जाता था और इसकी सीमाएं मुगल साम्राज्य के निकटवर्ती क्षेत्रों से जुड़ी थीं। अकबर ने प्रत्यक्ष सैन्य संघर्ष के स्थान पर सर्वप्रथम कूटनीतिक मार्ग का अनुसरण किया । वर्ष 1591 ई. में उसने दक्षिण के चार प्रमुख राज्यों- खानदेश, बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुंडा में अपने राजदूत भेजकर उन्हें मुगल संप्रभुता स्वीकार करने का प्रस्ताव दिया । इनमें से केवल खानदेश ने ही मुगल अधीनता स्वीकार की । कूटनीतिक विफलता के पश्चात, अकबर ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाते हुए अहमदनगर के उत्तराधिकार संघर्ष में सैन्य हस्तक्षेप किया । अहमदनगर द्वारा मुगल दूत के अपमान को आधार बनाकर अकबर ने सैन्य कार्रवाई की । अहमदनगर के घेराव 1595-1600 ई. के दौरान मुगलों को चाँद बीबी के प्रखर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, किंतु अंततः विजय मुगलों के पक्ष में रही ।

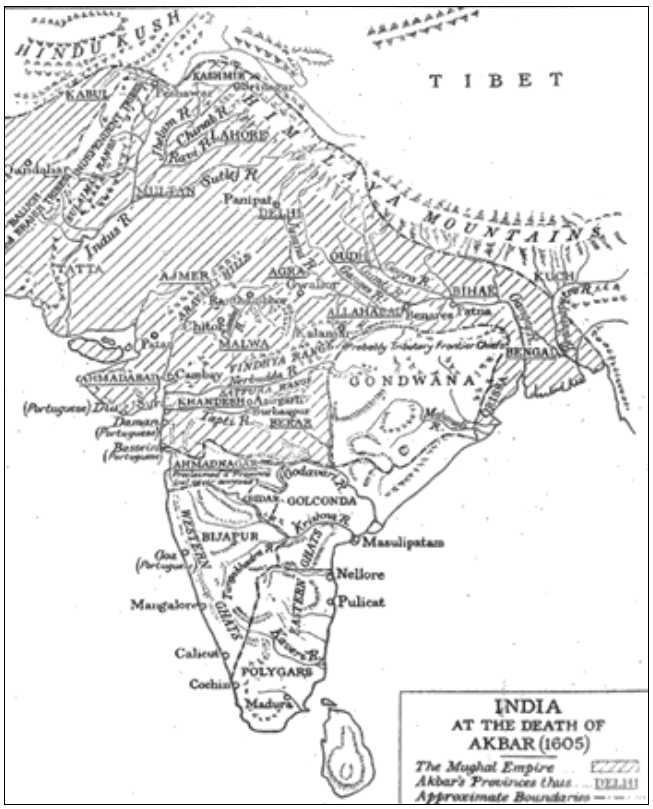


***Source***: The Cambridge History of India Vol. IV, the Mughul Period, LT.-Colonel Sir Wolseley Haig, p. 155.

वर्ष 1595 ई. में अहमदनगर के आंतरिक संघर्ष का लाभ उठाते हुए मुगलों ने बरार पर अधिकार कर लिया । 1597 ई. में बीजापुर और गोलकुंडा की संयुक्त सेनाओं को परास्त करने के पश्चात अकबर ने स्वयं दक्षिण अभियान का नेतृत्व संभाला । अकबर का स्पष्ट मानना था कि वह "साम्राज्य के भीतर किसी अन्य समानांतर सत्ता को स्वीकार नहीं करेगा ।" कालांतर में, खानदेश द्वारा सैन्य सहायता न देने के आरोप में अकबर ने दंडात्मक अभियान चलाया और 1601 ई. में असीरगढ़ की विजय के साथ खानदेश का पूर्णतः मुगल साम्राज्य में विलय कर दिया । असीरगढ़ की यह विजय

अकबर के जीवन की अंतिम महान सैन्य उपलब्धि थी, जिसे उसने सामरिक कौशल और कूटनीति के समन्वय से प्राप्त किया था । इसी उपलक्ष्य में उसने 'सम्राट' की उपाधि धारण की । यद्यपि अकबर दक्षिण में अपने विस्तार को और अधिक सुदृढ़ करना चाहता था, किंतु उत्तर भारत में शहजादा सलीम के विद्रोह के कारण उसे विवश होकर शहजादा दानियाल को दक्षिण का हाकिम नियुक्त कर वापस लौटना पड़ा, इस तरह अकबर कि दक्षिण नीति संतुलित थी ।

**जहांगीर की दक्षिण नीति:** जहांगीर (1605–1627 ई.) अपने पिता से प्राप्त विरासत से संतुष्ट था अतः संधि वार्ता के माध्यम से दक्षिण को पाना चाहता था जो कि संभव नहीं हुआ । उसने अकबर की नीति को ही जारी रखा, पर दक्षिण भारत में उसकी सक्रियता सीमित रही । राजनीतिक दबाव बनाये रखने हेतु जहांगीर ने आंशिक सैन्य अभियान किए । 1608 ई. से 1610 ई. के बीच अब्दुल रहीम खान-ए-खाना और उसके बाद आसफ खान, परवेज तथा मानसिंह जैसे कई अनुभवी सेनापति, मलिक अंबर को हराने में असफल रहे । अंततः 1616 ई. में जहांगीर ने शाहजहां (खुर्रम) को एक विशाल सेना और कुशल सेनापतियों के साथ भेजा । खुर्रम के सैन्य दबाव के कारण मलिक अंबर संधि करने हेतु विवश हुआ, जिसके परिणामस्वरूप मुगलों को अहमदनगर और अन्य महत्वपूर्ण किलों का अधिकार प्राप्त हुआ तथा खानेजहाँ लोदी को दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया गया ।

### शाहजहां की दक्षिण नीति

शाहजहां जब अपने पिता के अधीन दक्षिण में अभियान किया था तब उसको दक्षिण का व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त हो चुका था । अहमदनगर का मुगलों के साथ संघर्ष जहांगीर के शासनकाल से ही काफी बढ़ गया था । इस कारण साम्राज्य की स्थिरता और विस्तार हेतु अहमदनगर का पूर्ण विलय शाहजहां के लिए अनिवार्य हो गया था । इसी समय 1630 ई. में मराठा सरदार शाहजी भोंसले ने मुग़लों की सेवा स्वीकार की जो आगे चलकर मुग़लों के लिए एक चुनौती बन गई जिसमें सबसे अधिक उत्तरदायी शिवाजी थे, जो इन्हीं के कार्यकाल में नवोदित मराठा नेता थे ।

### शाहजहां की दक्षिण नीति का कारण

- शाहजहां को अपने पिता के काल में अहमदनगर में विशेष रूप से सफलता मिली।
- दक्षिण के इलाकों के अभियान का व्यक्तिगत अनुभव था ।
- मराठा शक्ति का प्रारंभिक उदय और नियंत्रण ।
- अहमदनगर के सुल्तान ने पुनः बालाघाट पर कब्जा करके संघर्ष अनिवार्य कर दिया था ।

### शाहजहां की गतिविधि

शाहजहां की दक्कन नीति का मुख्य उद्देश्य अहमदनगर का पूर्ण विलय और शेष राज्यों पर मुगल सत्ता स्थापित करना था जिसके लिए शाहजहां ने कुशल सैन्य अभियानों के साथ-साथ सूझ-बूझ कूटनीति एवं संधि वार्ता की नीति अपनाई । इसके पूर्व वह अपने पिता के राज्य काल में दक्षिण अभियान कर चुका था, जहाँ एक ओर 1630-32 ई. के भीषण अकाल ने दक्षिण की शिया सल्तनतों के पारिस्थितिकी पतन का मार्ग प्रशस्त किया, इसी क्रम में 1632-33 ई. में शाहजहां ने अहमदनगर को जीतकर उसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया । दक्षिण में मुग़ल स्थिति को स्थायी बनाने के लिए शाहजहां ने साम-दाम की नीति अपनाते हुए 1636 ई. में बीजापुर और गोलकुंडा के साथ महत्वपूर्ण संधियाँ की इस संधि में मराठा सरदार शाहजी को भी अपने कुछ किले मुग़लों को देने पड़े, इस संधि की मुख्य शर्तें निम्न थीं-

- अहमदनगर का एक-तिहाई हिस्सा बीजापुर को दिया गया, जिसके बदले बीजापुर ने मुगलों को 20 लाख रुपये दिए ।
- शाहजहां के नाम खुतबा पढ़ा जाये व शाहजहां के नाम के सिक्के चलाये जायें ।
- बीजापुर और गोलकुंडा के आपसी विवादों में मुगल सम्राट का निर्णय अंतिम माना गया ।
- बीजापुर को मराठा नेता शाहजी भोंसले को मुगल सीमाओं से दूर नियुक्त करने का आदेश दिया गया एवं शाहजी द्वारा जिन किलों पर कब्जा किया गया था उसमें से आधे से ज्यादा को मुग़लों को देना ।

इन संधियों ने दक्कन में मुगलों की स्थिति को अत्यधिक ठोस आधार प्रदान किया । इस तरह शाहजहां के काल में काफी हद तक दक्षिणी समस्याओं पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सका था और मुगल सत्ता का विस्तार संभव हो पाया था । हालाँकि 1636 ई. की संधियाँ लंबे समय के लिए थीं, परन्तु लगभग 20 वर्षों के भीतर शाहजहां ने स्वयं इन समझौतों की शर्तों को तोड़ना शुरू कर दिया। जिसका कारण निम्न है:-

- शाहजी भोंसले और गोलकुंडा में मीर जुमला का बढ़ता प्रभाव, दोनों की बढ़ती शक्ति मुगल सत्ता के लिए एक चुनौती और खतरा पेश कर रही थी ।
- मध्य एशिया में लड़ा गया बल्ख-बुखारा के विफल अभियान ने मुगल खजाने पर भारी बोझ डाल दिया, जिसकी भरपाई के लिए शाहजहां ने दक्कन के समृद्ध राज्यों से अधिक धन और संसाधनों की अपेक्षा की ।
- शाहजहां द्वारा अत्यधिक खर्च एवं दक्षिण में वित्तीय बोझ ।

अंततः इसने दक्षिण के सुल्तानों को 'खुत्बा' बदलने और सिक्कों पर मुगल नाम अंकित करने हेतु विवश कर केवल राजनीतिक ही नहीं, बल्कि एक वैचारिक संप्रभुता की लड़ाई भी लड़ी, जिसने उत्तर और दक्षिण के बीच एक नए शक्ति-संतुलन को जन्म दिया । इसके परिणामस्वरूप दक्कन के राज्यों और मुगलों के बीच संबंध अत्यधिक तनावपूर्ण और जटिल हो गए । संधि के टूटने से इन राज्यों को मुग़लों के प्रति अविश्वास पैदा हो गया तथा शाहजहां अब पूर्ण तरीके से इन्हें अपने साम्राज्य में मिलाना चाहते थे जिसका उत्तरदायित्व अपने पुत्र औरंगजेब को सौंपा ।

**औरंगजेब की दक्षिण नीति**

मुगल सम्राट औरंगजेब की दक्षिण नीति उसके शासनकाल का एक अत्यंत निर्णायक और विवादास्पद अध्याय माना जाता है । पूर्व में दक्षिण का गवर्नर रहने के कारण उसे इस क्षेत्र की भौगोलिक और राजनीतिक परिस्थितियों का व्यक्तिगत अनुभव था । 1636 ई. की संधियों के निरंतर उल्लंघन ने दक्कनी सल्तनतों और मुगलों के मध्य गहरे अविश्वास को जन्म दिया; साथ ही, इन संधियों के कारण हाथ से निकले किलों की पुनः प्राप्ति हेतु शिवाजी महाराज द्वारा किए गए क्षेत्रीय अभियानों ने मुगलों की सामरिक चिंताएं बढ़ा दी थीं ।

औरंगजेब का दक्षिण अभियान मात्र राजनीतिक ही नहीं, अपितु धार्मिक उद्देश्यों से भी प्रेरित था । उत्तर भारत में सिख गुरु तेग बहादुर की हत्या से 1675 ई. में उपजे सिख विद्रोह और 1679 ई. में जजिया कर के पुन: क्रियान्वयन से भड़के राजपूत विद्रोहों का दमन करने के पश्चात, औरंगजेब ने अपना पूर्ण ध्यान दक्षिण की ओर केंद्रित किया । शाहजहाँ की विस्तारवादी नीति को चरम पर ले जाते हुए उसने 1686 ई. में बीजापुर और 1687 ई. में गोलकुंडा का मुगल साम्राज्य में पूर्ण विलय कर दिया । दक्षिण को अपने अधिकार में करने के लिए अफजल खां, शाइस्ता खां, मिर्जा राजा जयसिंह, महाबत खां, शहजादा मुअज्जम, दिलेर खां और बहादुर खां जैसे सेनापतियों एवं सूबेदारों को नियुक्त किया जिसमें पूर्व मराठा सरदार नेताजी पालकर भी थे किंतु, मराठों के कड़े प्रतिरोध और क्षेत्रीय परिस्थितियों के कारण जब ये सभी सैन्य नायक असफल रहे, तो अंततः औरंगजेब को स्वयं अभियान की कमान संभालनी पड़ी, जो कालांतर में मुगल सत्ता के आर्थिक और सैन्य पतन का मार्ग प्रशस्त कर गई ।

**औरंगजेब के दक्षिण अभियान के कारण**

- 1636 ई. के दौरान खोये हुए प्रदेश का मुग़ल साम्राज्य में शामिल करना ।
- नई उभरती हुई मराठा शक्ति का दमन करना ।
- शिवाजी द्वारा स्वयं के सिक्के चलाना जो सम्राट के लिए असह्य था ।
- सम्राट की साम्राज्यवादी नीति एवं विस्तारवादी महत्वाकांक्षा ।
- रूढ़िवादी धार्मिक नीति एवं दारुल हर्ब से दारुल इस्लाम बनाने की चेष्टा ।

औरंगजेब की नीति का सबसे विफल पक्ष मराठों के साथ लम्बा संघर्ष रहा । छत्रपति शिवाजी और उनके उत्तराधिकारियों के विरुद्ध चले इस लंबे युद्ध ने मुगल सैन्य शक्ति और राजकोष को पूरी तरह खोखला कर दिया । अंततः, दक्कन के इस अंतहीन संघर्ष ने, जिसे दक्कन का नासूर भी कहा जाता है, मुगल साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया । औरंगजेब द्वारा दक्षिण के प्रति अपनाई गयी नीति को हम चार कालखंडों में समझ सकते हैं-

- प्रथम चरण: 1658 ई. से 1668 ई. के बीच ।
- द्वितीय चरण: 1668 ई. से 1681 ई. के बीच ।
- तृतीय चरण: 1681 ई. से 1687 ई. के बीच ।
- चतुर्थ चरण: 1687 ई. से 1707 ई. के बीच ।

**प्रथम चरण (1658 ई. -1668 ई.)**

इस समय शिवाजी अपने हिन्दवी साम्राज्य के स्थापना विस्तार में लगे हुए थे जिन्हें बीजापुर से सहायता प्राप्त थी अतः 1657 ई. में शिवाजी ने कल्याण और भिवंडी पर अधिकार कर मुग़लों से संघर्ष मोड़ ले ली । 1657 ई. में औरंगजेब ने संधि वार्ता करनी चाही किन्तु शिवाजी ने ठुकरा दिया वह इसलिए की संधि शर्तें शिवाजी के अनुसार नहीं थी । इस पर सम्राट ने बीजापुर से संधि कर शिवाजी के शक्ति को ख़त्म करने का प्रस्ताव रखा जिसके तहत

1659 ई. को अफजल खां को नियुक्त किया गया व 10 नवम्बर 1659 ई. प्रतापगढ़ के युद्ध में शिवाजी ने अफजल खां का वध कर दिया ।

सम्राट ने शाइस्ता खां को दक्षिण के सूबेदार के तौर पर 1659 ई. में नियुक्त किया किन्तु छत्रपति शिवाजी ने इन्हें भी 1663 ई. में पराजित कर दिया । तत्पश्चात सम्राट ने मिर्जा राजा जयसिंह को 1664 ई. में नियुक्त कर शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा जिससे 1665 ई. में दोनों के मध्य पुरंदर की संधि हुई और शिवाजी को आगरा जाने पर बाध्य होना पड़ा । 1666 ई. में शिवाजी जब आगरा गये तब उनको सम्राट द्वारा बंदी बना लिया गया किन्तु शिवाजी वहां से गुप्त तरीके से 1667 ई. को पलायन कर गये व मुग़लों के विरुद्ध अभियान करने लगे व पुनः खोये किलों को हस्तगत करने लगे जो मुग़लों के लिए एक प्रकार की ललकार और चुनौती कम नहीं थी ।

**द्वितीय चरण (1668 ई. -1681 ई.)**

जब मराठे पुनः किलों को हस्तगत करने लगे तब औरंगजेब ने इन मराठों को मुख्य चुनौती के रूप में माना तथा 1670 ई. में महाबत खां को मराठों के विरुद्ध भेजा जो असफल रहा तब 1673 ई. में बहादुर खां को नियुक्त किया गया । 1674 ई. में शिवाजी ने राज्याभिषेक कर प्राचीन प्रथा को पुनर्जीवित कर दिया तथा भारत के कम से कम एक भाग में पूर्ण हिन्दू राज्य की पुनर्स्थापना की । यह मुग़ल सम्राट के लिए असह्य तथा बहुत बड़ी चुनौती सिद्ध हुई । एक तत्कालीन मराठी कवि ने शिवाजी की अटूट सफलता पर सम्राट के दुःख को इस प्रकार वर्णित किया है:-

> "जैसे सागर के जल की तौल नहीं हो सकती,
> जैसे मध्यान्ह सूर्य की ओर कोई टकटकी लगाकर देख नहीं सकता,
> जैसे अपनी मुट्ठी में कोई जलता कोयला नहीं दबा सकता, उसी प्रकार मैं इस शिवाजी पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता ।"

1668 ई. से 1681 ई. के बीच, गोलकुंडा में मदन्ना और अकन्ना नामक दो भाइयों का वर्चस्व काफी बढ़ गया था, जिन्होंने 1672 ई. से लेकर 1687 ई. में राज्य के अंत तक वहाँ प्रभावी रूप से शासन किया । इन भाइयों ने मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध गोलकुंडा, बीजापुर और छत्रपति शिवाजी महाराज के बीच एक शक्तिशाली त्रिपक्षीय गुट स्थापित करने की कूटनीति अपनाई । किन्तु मुग़लों ने 1676 ई. में बीजापुर पर आक्रमण किया और 1677 ई. तथा 1679-80 ई. में भी सैन्य कार्यवाई किए, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली । मुग़लों की इस विफलता का मुख्य कारण मदन्ना और अकन्ना का दृढ़ नेतृत्व, दक्षिण का भौगोलिक क्षेत्र, दक्कनी राज्यों की एकजुट सेना और मुग़ल सेना के पास आवश्यक युद्ध सामग्री व रसद की कमी थी ।

**तृतीय चरण (1681 ई. -1687 ई.)**

औरंगजेब ने शहजादे अकबर द्वितीय को राठौर- विद्रोह का दमन करने की जिम्मेदारी सौंपी तब उसने राजपूत शासक दुर्गादास राठौर से संधि करने का प्रयत्न किया । किन्तु सम्राट ने संधि न करने की सलाह दी और युद्ध करने के लिए उत्प्रेरित किया । जिस पर अकबर द्वितीय ने 1680 ई. में सम्राट के विरुद्ध विद्रोह कर दिया व उत्तरी क्षेत्र में मुग़ल सेना से घिर जाने के कारण उसने दुर्गादास राठौर के साथ 1681 ई. में दक्षिण में मराठों की शरण ले ली, औरंगजेब अपने विद्रोही पुत्र अकबर का पीछा करते हुए दक्कन गया, तब उसने पहले छत्रपति संभाजी महाराज के खिलाफ युद्ध का आदेश दिया । उसने बीजापुर और गोलकुंडा को मराठों से अलग करने का एक नया प्रयास किया, लेकिन उसकी यह विभाजनकारी नीति सफल नहीं हुई ।

**अंततः** औरंगजेब ने सम्पूर्ण मुगल सेना के साथ हमला किया । औरंगजेब ने 1686 ई. में बीजापुर और 1687 ई. में गोलकुंडा को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया । इस परिप्रेक्ष्य में तो औरंगजेब की दक्कन नीति प्रथमतया कामयाब नजर तो आती है, लेकिन उसे जल्द ही आभास हो गया कि बीजापुर और गोलकुंडा का विनाश उसकी कठिनाइयों की मात्र शुरुआत थी । इसके बाद औरंगजेब के जीवन का अंतिम और सबसे कठिन दौर आरम्भ हुआ ।

**चतुर्थ चरण (1687 ई. -1707 ई.)**

बीजापुर और गोलकुंडा के पतन के बाद औरंगजेब ने अपना पूरा ध्यान मराठों पर केंद्रित किया । वहीं छत्रपति संभाजी ने न केवल बुरहानपुर और औरंगाबाद पर आक्रमण किया, बल्कि औरंगजेब के विद्रोही पुत्र, अकबर को 1681 ई. में शरण देकर मुगल सम्राट को चुनौती दी । 1689 ई. में संभाजी महाराज को मुगल सेना ने संगमेश्वर में पकड़ लिया और औरंगजेब के आदेश पर मार डाला गया, इससे भले की छत्रपति को मार डाला गया हो, परन्तु मराठा

संघर्ष की भावना जीवित रही । संभाजी के निर्भय आत्म-बलिदान से मराठा साम्राज्य संगठित और सशक्त हो गया ।

इतिहासकारों के अनुसार यह औरंगजेब की एक बड़ी राजनीतिक भूल थी, क्योंकि इसने मराठों को संघर्ष हेतु उद्देश्य दे दिया व 1690 ई. से 1703 ई. तक सम्राट ने मराठों से बात करने से इनकार किया । परिस्थितियों को देखते हुए 1703 ई. में औरंगजेब ने मराठों से समझौता वार्ता शुरू की और वह शाहूजी महाराज (संभाजी के पुत्र) को रिहा करने 'सरदेशमुखी' के अधिकार देने पर भी विचार करने लगा था । संभाजी के भाई राजाराम ने 1689 ई. में राज्याभिषेक कर जिंजी से संघर्ष जारी रखा, 1698 ई. में मुग़लों ने यहाँ अधिकार कर लिया व राजाराम बच निकले । मराठों का प्रतिरोध पश्चिम से पूर्वी तट तक फैल गया उन्होंने अपने खोये किलों को पुनः हस्तगत करने लगे ।

सन् 1700 ई. में राजाराम की मृत्यु के पश्चात, उनकी विधवा ताराबाई ने नेतृत्व संभाला । ताराबाई ने अपने अल्पायु पुत्र शिवाजी द्वितीय को गद्दी पर बैठाया और स्वयं मराठा प्रतिरोध की कमान अपने हाथों में ले ली । उनके कुशल नेतृत्व में मराठों का प्रतिरोध पश्चिम से पूर्वी तट तक फैल गया और वे अपने खोए हुए किलों को पुनः हस्तगत करने लगे । 1700 ई. से 1705 ई. के बीच, औरंगजेब का अंतिम समय अत्यधिक संघर्षपूर्ण रहा; वह ताराबाई के रणनीतिक कौशल और निरंतर मराठा आक्रमणों के सामने विवश होकर एक किले से दूसरे किले की घेराबंदी में लगा रहा ।

इस दौरान प्राकृतिक आपदाओं और ताराबाई के नेतृत्व में मराठा सेना ने मुगलों की रसद व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिससे मुगल सेना जर्जर हो गई । सैनिकों और सरदारों में गहरा असंतोष फैल गया चूँकि यह संघर्ष लम्बे समय से चला आ रहा था जिसमें विफलता ही हाथ आ रही थी । समकालीन विदेशी यात्री मनुची ने अपने आँखों देखा विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है- "प्रतिवर्ष एक लाख सैनिक तथा तीन लाख पशु मौत का शिकार हुए 1702 ई.-1704 ई. के बीच प्लेग महामारी फैलने से 20 लाख से अधिक पशुओं एवं मनुष्यों की मृत्यु हुई ।" 1706 ई. तक आते-आते औरंगजेब को यह स्पष्ट हो गया था कि मराठा किलों को जीतने की दीर्घकालिक योजना पूरी तरह विफल हो चुकी है । विवश होकर उसने पीछे हटने का निर्णय लिया और औरंगाबाद की ओर कूच किया । इस पीछे हटती मुगल सेना पर मराठा सैनिक निरंतर घात लगाकर हमले करते रहे जिससे मुगलों को भारी जन-धन की हानि हुई । चूँकि मराठे सीधे दिल्ली पर आक्रमण करना चाहते थे, जिसे औरंगजेब ने मृत्युपर्यंत रोके रखा, अंततः मराठों ने 1717-18 ई. में दिल्ली पर आक्रमण किया जब सम्राट की मृत्यु हो चुकी थी ।

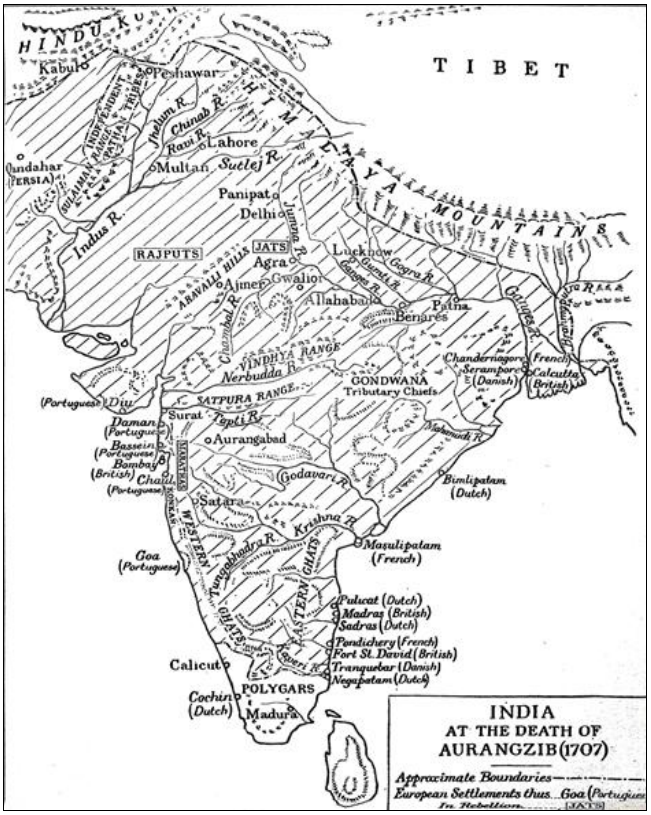


***Source***: The Cambridge History of India Vol. IV, the Mughul Period, LT.-Colonel Sir Wolseley Haig, p. 318

20 फ़रवरी, 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु अहमदनगर में हुई, तब तक मुगल साम्राज्य की नींव पूरी तरह हिल चुकी थी । वह विरासत में एक ऐसा साम्राज्य छोड़ गया जो आंतरिक विद्रोहों, आर्थिक कंगाली और प्रशासनिक अस्थिरता से बुरी तरह घिरा हुआ था । अंततः दक्कन के इस अंतहीन संघर्ष ने, जिसे दक्कन का नासूर भी कहा जाता है, मुगल साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया । औरंगजेब के दक्कन की इन विफलताओं और गहराते संकटों ने अंततः विशाल मुगल साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया ।

निष्कर्ष- मुगल दक्षिण नीति का विकास अकबर से औरंगज़ेब तक 'लचीली कूटनीति' से 'कठोर सैन्य संलयन' की ओर एक स्पष्ट संक्रमण को दर्शाता है । जहाँ अकबर ने 'सीमित प्रभुसत्ता' और 'शक्ति-संतुलन' के माध्यम से दक्षिण के राज्यों को मुगल प्रभाव में लाने और पुर्तगाली नौसैनिक खतरे को रोकने के लिए 'बफर ज़ोन' के रूप में इस्तेमाल किया, वहीं जहाँगीर और शाहजहाँ ने 1636

ई. की संधियों के माध्यम से इन शिया सल्तनतों को 'करद राज्यों' में बदलकर प्रशासनिक और आर्थिक स्थिरता प्रदान की ।औरंगज़ेब की सबसे बड़ी प्रशासनिक भूल बीजापुर और गोलकुंडा की उपजाऊ भूमियों को 'खालिसा' में रखना और मनसबदारों को युद्ध-ग्रस्त या बंजर जागीरें देना था, जिसने जागीरदारी संकट को अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया । औरंगज़ेब की 'पूर्ण क्षेत्रीय विलय' की हठधर्मी नीति ने बीजापुर और गोलकुंडा जैसी मध्यवर्ती शक्तियों को समाप्त कर मुगलों को मराठों के सीधे और अंतहीन छापामार संघर्ष के सामने ला खड़ा किया । औरंगज़ेब की यह रणनीति केवल सैन्य विफलता नहीं थी, बल्कि एक 'प्रणालीगत पतन' थी, उसने 'खालिसा' भूमि के विस्तार द्वारा जागीरदारी संकट को जन्म दिया और अपनी भारी घुड़सवार सेना की 'तकनीकी जड़ता' के कारण दक्षिण के पहाड़ी भूगोल में पराजित हुआ । अंततः दक्षिण का अभियान जिसे अकबर ने एक रणनीतिक अवसर के रूप में देखा था, औरंगज़ेब के काल तक आते-आते साम्राज्य के लिए दक्कन का नासूर सिद्ध हुआ, जिसने मुगल सत्ता की जड़ों को पूरी तरह खोखला कर दिया ।

## संदर्भ


1. Chandra, Satish. History of Medieval India (800-1700). Hyderabad: Orient Blackswan Private Ltd., 2020
2. Chandra, Satish. Medieval India from Sultnat to the Mughals. Sixth. New Delhi: Har-Anand Publications Pvt. Ltd., 2022
3. Duff, James Grant. A History of the Mahrattas. Vol. 1. Calcutta: R. Cambray & Co. Law ooksellers & Publishaers, 1912
4. Elliot, Sir H.M. the History of India as told by its own historians The Muhammadan Period. Ed. Prof. John Dowson. Calcutta: Susil Gupta (India) LTD. Calcutta, 1877
5. Faruki, Zahiruddin. Aurangzeb and His Times. Bombay: D.B. Taraporevala Sons and Co. "Treasure House of Books" Hornby Road, 1935
6. Manucci, Niccolao. Storia do Mogor or Mogul India 1653-1708. Trans. William Irvine. Vol. 2. London, Murray: London John Murray, Albemarle Street, 1907
7. Sardesai, G.S. New History of Marathas. Vol. 1. Bombay: K. B. Dhawale for Phoenix Publications, Chira Bazar, 1946
8. Sarkar, Sir Jadunath. History of Aurangzib. Vol. volume 4. Calcutta: M.C. Sarkar & Sons, 1970
9. Sarkar, Sir Jadunath. Shivaji and his times. Second. London: Longmans, Green and co. 39 Paternoster Row, London, 1920
10. Sarkar, Sir Jadunath. Studies in Mughal India. Calcutta: M.C. Sarkar & Sons, 1919
11. Sarkar, Sir Jadunath. Tarikh-I-Dilkasha. Ed. VG Khobrekar. Trans. Sir Jadunath Sarkar. Maharashtra: Government of Maharashtra, 1972
12. Sen, Surendranath. Siva Chhatrapati. Vol. 1. Calcutta: University of Calcutta, 1920
13. Smith, Vincent A. The Oxford History of India from the Earliest Times to the end of 1911. Second. Oxford,England: Oxford At The Clarendon Press, 1923
14. अहमद, डॉ. लईक. मुग़ल कालीन भारत (1526-1740). इलाहाबाद: प्रयाग पुस्तक भवन, 2005
15. एम.डी., फैन्च्विस बर्नियर. बर्नियर की भारत यात्रा. अनुवाद. गंगा प्रसाद गुप्त. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, 2005
16. खन्ना, डॉ. कैलाश. मध्यकालीन भारत का इतिहास. भाग. 2. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2016
17. चन्द्र, सतीश. उत्तर मुगलकालीन भारत (1707-1740). नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 1993 ।
18. वर्मा, हरीशचन्द्र. मध्यकालीन भारत (1540-1761). भाग. 2. नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2017 ।
19. श्रीवास्तव, नीरज. मध्यकालीन भारत: प्रशासन, समाज एवं संस्कृति. द्वितीय संस्करण. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, 2010 ।
20. हबीब, इरफ़ान. अकबर और तत्कालीन भारत. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2022 ।


**Creative Commons (CC) License**
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.